बच्चन की आत्मकथा में व्यक्ति और समाज के अंतःसंबंधों की पड़ताल का विश्लेषणात्मक अध्ययन

रमाशंकर शर्मा
शोधार्थी– एम.ए.(हिन्दी) नेट
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुरैना

शोध–सार

बच्चन ने अपनी आत्मकथा के पहले खंड 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' में अपने जीवन को एक साधारण मनुष्य का जीवन बताया है। साथ ही, उनका यह भी मानना है कि मुझे फिर से इच्छानुकूल जीवन जीने की क्षमता दे दी जाए तो मैं अपना जीवन जीने के अतिरिक्त किसी और का जीवन जीने की कामना नहीं करूँगा उसकी सब त्रुटियों, कमियों, भूलों, पछतावों के साथ। चूँकि बच्चन ने इसी के बल पर दुनियाँ के साधारण जनों के साथ अपनी एकता का अनुभव किया, इसीलिए बच्चन का सुख–दुख साधारण जनों का सुख–दुख बन पाया है। बच्चन ने स्वयं अपनी आत्मकथा में इस बात को स्वीकार किया है कि वे सृजनशील लेखन के माध्यम से निजी विकारों को शांत करने का प्रयत्न कर रहे थे। इसके साथ ही, यह भी माना है कि मेरे लेखन से यदि किन्हीं औरों के विकार शांत हो रहे थे तो शायद मेरा स्वान्तः इतना संकुचित और मेरे विचार इतने निजी नहीं थे जितना मैंने उन्हें मान लिया था या जितना औरों ने भी कभी–कभी समझा है। बच्चन ने अपनी आत्मकथा में यह प्रश्न स्वयं उठाया है लोग मेरी रचनाएँ पढ़ रहे थे क्यों?

वास्तव में बच्चन की आत्मकथा उनके जीवन का लेखा–जोखा मात्र नहीं है, वरन् एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण है जो नितांत सामान्य

मुख्य बिन्दु– *अंतःसंबंधों, त्रुटियों, इच्छानुकूल, साधारण, संकुचित, लगनशील, विशिष्टता, आत्मकथा, प्रसंगवश।*

होता हुआ भी एकदम विशिष्ट है। वह लग्नशील और परिश्रमी है। अपनी इसी विशिष्टता के कारण वह असाधारण प्रसिद्धि एवं लोकप्रियता वाला कवि बन पाया है। उनकी आत्मकथा एक सामान्य मनुष्य के सामान्य जीवन संघर्ष की कथा है, जिसे एक स्वाभाविक शैली में लोक–मर्यादा के भीतर उसके गुण–दोष के साथ प्रस्तुत किया गया है।

आत्मकथा में निजता की छाप होती है। प्रसंगवश कई घटनाएँ भी सामने आती हैं, लेकिन उनके बीच भी लेखक का व्यक्तिगत संसार ही होता है। चूँकि आत्मकथा में लेखक के आत्म का चित्रण होता है, अतः इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि उसमें वर्णित अधिकांश प्रसंग निजी नहीं होगा। लेकिन यहाँ पर यह देखना ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि उन निजी प्रसंगों का समाज से कोई संबंध है या नहीं। बच्चन ने अपने निजी संसार के माध्यम से बाहरी दुनियाँ को अभिव्यक्त किया है। वे अपने इस प्रयास में कितने सफल और असफल रहे हैं, इसे उजागर करना अनिवार्य है। उनकी आत्मकथा में ऐसे कई तथ्य बिखरे पड़े हैं, जिससे इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है।

जन्म से व्यक्ति का समाज के साथ और समाज का व्यक्ति के साथ गहरा संबंध होता है। किसी भी व्यक्ति के सामाजीकरण की पूरी प्रक्रिया समाज के अंदर होती है। वह जो कुछ सीखता, अनुभव करता अथवा प्राप्त करता है उसका आधार समाज होता है। व्यक्ति के पूरे स्वरूप के निर्धारण में समाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। समाज जिस तरह की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से संबंधित होगा, व्यक्ति का स्वरूप भी उसी प्रकार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के तहत होगा। उसके विचार उसी ऐतिहासिक–सामाजिक परिवेश के अनुसार होंगे। प्रत्येक देश की

उसके युग के अंतर्गत, एक विशेष प्रकार की सामाजिक स्थिति होती है और उस युग में जीने वाले लोगों की भी स्थिति एक भिन्न प्रकार की होती है।

व्यक्ति अपने ऐतिहासिक–सामाजिक परिवेश में सामाजीकरण के दौरान अपने अंदर एक खास तरह की दृष्टि पैदा करता है। उसकी यह दृष्टि उसके देश–काल और समाज से पूर्णरूपेण प्रभावित रहती है या यूँ कहा जाये कि उसकी दृष्टि के बनने में उसके देश–काल और समाज की ही प्रमुख भूमिका होती है। व्यक्ति अपने सामाजीकरण के दौरान समाज द्वारा स्थापित मान्यताओं एवं परंपराओं से भी टकराता है, उनमें से कई को स्वीकार करता है तो कुछ को सिरे से नकार देता है। जिन चीजों को वह नकारता है, उनकी जगह कई और चीजों को लाने की कोशिश करता है। और यहीं पर समाज में परिवर्तन की शुरुआत होती है। इस प्रकार समाज से व्यक्ति और व्यक्ति से समाज प्रभावित होता है। साथ ही, व्यक्ति और समाज के इसी पारस्परिक अंतःसंबंध से समाज निरंतर आगे की ओर गतिशील रहता है।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जब कोई रचनाकार, रचना– विधान कर रहा होता है तो वह समाज से प्राप्त दृष्टि पर ही निर्भर करता है। उसकी रचना उसकी चेतना के भीतर उठे तनाव, आंदोलन या बेचैनी की सौंदर्यपूर्ण अभिव्यक्ति होती है। चेतना का यह आंदोलन रचनाकार के सामाजिक परिवेश, उसकी समूहपरक अनुभूति और निज के निरीक्षण–अनुभव की विषयवस्तु है। यहाँ पर रचनाकार एक व्यक्ति के रूप में समाज से बहुत कुछ लेता है। साथ ही, रचना के माध्यम से समाज को बहुत कुछ देने का प्रयास भी करता है। ये सभी तथ्य रचना में किसी न किसी रूप में मौजूद रहते हैं। इसी प्रकार रचना में एक विशेष प्रकार का व्यक्ति और समाज का अंतःसंबंध भी अवस्थित होता है।

हरिवंशराय बच्चन अपनी आत्मकथा में जिस परिवेश का वर्णन कर रहे हैं, उस परिवेश में व्यक्ति समाज की कई मान्यताओं और परंपराओं से टकरा रहा था। बच्चन ने समाज को उस तरह स्वीकार नहीं किया, जिस रूप में समाज उनके देशकाल में था। लोकमर्यादा के तहत बच्चन ने उस रूप को स्वीकार किया जो उनके मानस को संतुष्टिपरक लगा। यही कारण है कि उनकी आत्मकथा में व्यक्ति और समाज का संबंध एक विशेष अर्थ लिए हुए है, एक ऐसा अर्थ जो समाज के अंधविश्वासों, कुरीतियों एवं निराधार मान्यताओं को नकारता है। अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने अपने पाठक समुदाय को इसके प्रति सचेत और सजग भी किया।

"मूल व्यक्ति, फिर उसका परिवार, फिर कुल, फिर समाज, फिर परिवेश और इसके मध्य, मध्यवर्गीय जड़ स्वभाव संस्कारों में पला बढ़ा अत्यंत भाव प्रवण एक व्यक्ति और इसके इर्द–गिर्द उभरता हुआ नवयुग उसका देश–कालगत नया परिवेश, जिसके परिप्रेक्ष्य में नयी व्यवस्था, शिक्षण, साहित्य सांस्कृतिक बोध, सभ्यता, जीवन की नई–नई उमंगे तरंगे और जिनसे अनिवार्यतः प्रभावित उद्वेलित होने वाला जनमानस तदनुकूल जीवन–संघर्ष की भाषा में इस अंर्तद्वंद्व को इस आत्म–चित्रण में पहली बार प्रकट किया गया है।"[i]

बच्चन की आत्मकथा में केवल एक व्यक्ति के जीवन चरित्र का प्रस्तुतीकरण ही नहीं है, बल्कि उसमें लेखक के व्यक्तित्व का भी पूरे सामाजिक परिवेश में प्रस्तुतीकरण है। आत्मकथा में बच्चन को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में देखा जा सकता है, जो नितान्त सामान्य होता हुआ भी विशिष्ट है। साधारण मानसिक शक्तियों वाला बालक जीवन में किसी भी प्रकार की महत्त्वाकांक्षा अथवा ध्येय से रहित होकर किस प्रकार अपने लगन और परिश्रम के द्वारा एक असामान्य लोकप्रिय लेखक बन जाता है। उनके व्यक्तित्व में एक विशेष प्रकार का आत्मविश्वास

एवं स्वाभिमान दिखाई पड़ता है। यह आत्मविश्वास और स्वाभिमान अपने मित्रों एवं पूर्वजों के व्यक्तित्व के वर्णन में दृष्टिगोचर होता है। यही आत्मविश्वास और स्वाभिमान उनके व्यक्तित्व को समाज में श्रेष्ठ बनाता है।

बच्चन का जन्म 27 नवंबर 1907 ई. को प्रयाग में हुआ था। यह समय वही है, जब भारत का लगभग प्रत्येक व्यक्ति ब्रिटिश सत्ता से आजादी का सपना देखता था। सपना ही नहीं देखता था, बल्कि स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल भी था। पूरा समाज एकजुट होकर आजादी के लिए संघर्षशील था। बंग–भंग के बाद जो राजनीतिक आंदोलन चला, उसने धीरे–धीरे क्रांतिकारी रूप धारण किया। बँटवारे के विरुद्ध प्रतिवाद के रूप में विदेशी माल का बहिष्कार होने लगा। यही नहीं, बल्कि भारत के विविध भागों में गुप्त समितियाँ बन चलीं। इनका स्पष्ट उद्देश्य था– अस्त्र–शस्त्र जमा करना और बम बनाना, जिससे ये विशेष प्रकार के अफसरों का काम तमाम कर दें तथा यदि संभव हो तो सशस्त्र क्रांति का संगठन करें। **"सरकार ने इसके विरुद्ध कड़ी कार्यवाहियाँ कीं। वैसे कानून पास किए गए, जिन्होंने जन–आंदोलनों एवं प्रेस (समाचार पत्र) और सार्वजनिक सभाओं पर रोक लगा दी। कुछ को फाँसी पर लटका दिया गया तो कुछ को जीवन भर के लिए काला पानी भेज दिया गया। चारों तरफ दमन का शासन था। फिर भी हम आज़ादी के लिए संघर्षशील थे।"**[ii]

इनके अलावा हमारे समाज में भी कई तरह की बुराइयाँ थीं। इन बुराइयों को यहाँ के बुद्धिजीवी सुधारने का प्रयास कर रहे थे, जिससे हमारा समाज विकसित और राष्ट्र स्वतंत्र हो सके। इस समय व्यक्ति आत्मकेंद्रित कम और समाज के प्रति उत्तरदायी ज्यादा था। एक ओर जहाँ व्यक्ति आत्मजीवन के लिए संघर्षरत था वहीं समाज को विकसित करने के लिए चिंतित भी। बच्चन की आत्मकथा के प्रथम खंड

'क्या भूलूँ क्या याद करूँ में' व्यक्ति और समाज का यही संबंध पता चलता है।

''हरिवंशराय 'बच्चन' अपनी आत्मकथा में स्वयं एक व्यक्ति की कथा कहते हैं। एक ऐसा व्यक्ति जो सामाजिक व्यवस्था से जूझते हुए और अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाते हुए एक सामान्य व्यक्ति से असामान्य एवं अद्वितीय रचनाकार बन जाता है। उनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण यह है कि मैंने जिंदगी को तोड़ा तो नहीं, पर झिंझोड़ा कम नहीं था।''[iii] एक ऐसा जुझारू व्यक्तित्व जो स्वयं अपने व्यक्तित्व एवं समाज से जूझता हुआ हमेशा अपने कर्म और कर्त्तव्य को प्राथमिकता देता रहा। इस संदर्भ में उन्होंने व्यक्त किया है।

''कर्म स्वभाव का प्रतिबिम्ब है। इस प्रकार का अकर्मण्य दृष्टिकोण मुझे अच्छा नहीं लगता। पर इस अच्छा न लगने में शायद मेरा स्वभाव प्रमुख कारण है। असहिष्णु न बनूँ तो मुझे उस स्वभाव को भी समझना चाहिए जो कर्म–प्रदर्शन करके भी सफल नहीं होता, उल्टे अपनी इकाई खो देता है।.... जीवन में ज्यादातर टूटे हुए लोग वे हैं, जो अपने स्वभाव और कार्य में साम्य स्थापित नहीं कर पाते।''[iv]

वास्तव में बच्चन का व्यक्तित्व इस प्रकार बना प्रतीत होता है जो समाज द्वारा स्थापित किसी भी मान्यता को जब तक पूरी तरह से अपने आदर्श के पैमाने पर नाप–तौल नहीं कर लेता स्वीकार नहीं करता। उन्होंने अपनी आत्मकथा में समाज द्वारा प्रचलित एक मान्यता का जिक्र इस प्रकार किया है–

''पुरानी लीकों को पीटने में मेरा विश्वास न रह गया था। फिजूलखर्ची यह ऊपर से लगती थी। मेरे लड़कों के पहले बाल उतरवाने की कोई विशेषता नहीं दी गई। मेरी पत्नी कट्टर सिख परिवार की हैं जिनके यहाँ बाल उतारे ही नहीं जाते, मेरे परिवार में उतारे जाते थे,

पर बड़े विधान के साथ हम दोनों ही रूढ़िमुक्त हो चुके थे। नाई को बुलाकर बाल कटा दिए। सौभाग्य से किसी का बाल बाँका नहीं हुआ।"[v]

बच्चन का व्यक्तित्व समाज द्वारा निर्धारित मान्यता से वहीं तक सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश करता है, जहाँ तक बच्चन की तर्कबुद्धि पर वह सही और उचित ठहरता है। समाज द्वारा चली आ रही व्यर्थ परंपराओं के साथ बच्चन का व्यक्तित्व एक व्यक्ति के रूप में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास नहीं करता। उन्होंने समाज में निर्धन व्यक्ति की समस्याओं का जिक्र किया है–

"मध्ययुगीन समाज, और हम प्रायः अब भी उसी में रहते चले आ रहे हैं, इस प्रकार संगठित हैं कि वह अपवादों को लेकर नहीं चलता। सबके लिए एक ही नमूने की जिंदगी है। जहाँ भी किसी ने उस नमूने से अलग कुछ करना चाहा, वह भिन्ना उठता है। नमूने पर लाने के लिए तरह–तरह के उचित–अनुचित दबाव डालता है। और यदि कोई नमूने के अनुरूप ढलने से इंकार ही करता जाता है तो उसे मक्खी की तरह निकालकर फेंक देता है, उसका बहिष्कार करता है। उसे निम्नता का, या कम–से–कम सबसे कटे हुए होने का हीन बोध कराता है। आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र, अलग खड़े होने का साहस करते हैं; पर निर्धन और समाज–निर्भर लोग नमूने की जिंदगी पर ही उतर आने को बाध्य होते हैं। सत्याग्रह तो शायद निर्बल का हथियार है। समाज दुराग्रह करता है।"[vi]

बच्चन की विवेकशील बुद्धि समाज द्वारा स्थापित मान्यताओं को आसानी से स्वीकार नहीं कर पाती थी। और यही कारण था कि उन्होंने अपने नाम के साथ जाति का संकेत न लिखकर 'बच्चन' लिखा। उन्होंने इस संदर्भ में लिखा है–

"जाति की जड़, अर्थहीन और हानिकारक रूढ़ियों से निम्नवर्ग के लोग उतने ही जकड़े हैं जितने उच्च वर्ग के लोग एक छोटा–सा

कदम इस दिशा में यह उठाया जा सकता है कि लोग अपने नाम के साथ अपनी जाति का संकेत करना बंद कर दें। जिन दिनों मैं यूनिवर्सिटी में अध्यापक था, मैं अपने बहुत से विद्यार्थियों को प्रेरित करता था कि वे अपने नाम के साथ अपनी जाति न जोड़ें. अपने को राम प्रसाद त्रिपाठी नहीं, केवल राम प्रसाद कहें। भारत की आजाद सरकार चाहती तो एक विधेयक से नाम के साथ जाति लगाना बंद करा सकती थी कम–से–कम सरकारी कागजों से जाति का कॉलम हटा सकती थी इसके परिणाम दूरगामी और हितकर होते। पर अभी उसमें कुछ भी क्रांतिकारी करने का साहस नहीं है। वह जैसा चला आया है, वैसा ही, या उसमें थोड़ा–बहुत हेर–फेर करके चलाए जाने में ही अपनी चातुरी और सुरक्षा ही समझती है।''[vii]

बच्चन अपने को रचनाकार बनाने में जितना समाज का हाथ मानते थे, उतना ही स्वयं का भी वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं–

''यह सत्य है कि मेरे निर्माण में मेरे युग का स्थानीय वातावरण का, मेरी शिक्षा संस्था का मेरे परिवार का, मेरे पास–पड़ोस का हाथ है मनुष्य का विकास शून्य में नहीं होता पर एक हाथ ऐसा भी है जो सबको एक विशिष्ट रूप से मुझे निर्मित करने को प्रेरित प्रभावित और कभी–कभी बाध्य करता रहा है। यह मेरा अपना ही हाथ है। अपने हाथ से अपना हाथ टटोलना मुश्किल है, पर बिना इसको टटोले अपने विकास का इतिहास लिखना या दम्भी होना है या फिर दयनीय। मेरी लेखनी मुझे इन दोनों स्थितियों से बचाए, क्योंकि न तो यही सत्य है कि सारी परिस्थितियाँ दासी बन कर सब कुछ मेरे अनुकूल करती गई और न यही कि उन्होंने मुझे अपना दास समझकर जैसा चाहा, बना दिया।''[viii]

यह बात सही है कि हरिवंशराय को 'बच्चन' बनाने में उनके संघर्षशील व्यक्तित्व और हठी एवं जिद्दी स्वभाव का भी बड़ा हाथ रहा है। उन्होंने अपने हठी स्वभाव के बारे में वर्णन किया है–

"मुझे क्या करना है, क्या नहीं करना है, इसका मैं अपनी सहज बुद्धि से निर्णय करता था मैं यह दावा नहीं करूँगा कि मेरे फैसले सदा ठीक रहे हैं। और मैं उन पर अड़ जाता था और जितना ही मुझे समझाया बुझाया जाता था, मुझ पर जोर डाला जाता था उतनी ही मेरी ज़िद बढ़ती जाती थी, और अंत में मुझे अपनी सी करने को छोड़ दिया जाता था और उसे मैं अपनी जीत समझता था।"[ix]

बच्चन समाज के साथ गहरे जुड़े हुए थे। जब भी किसी व्यक्ति को उनकी सहायता की जरूरत होती, वे अक्सर आगे होते अपनी सहृदयता के कारण उन्हें कई बार परेशानियों का भी सामना करना पड़ा। वे अपने जीवन में आये कई व्यक्तियों से प्रभावित हुए। सबसे ज्यादा प्रभावित वे अपने मित्र कर्कल से थे। कर्कल से वे इस तरह प्रभावित थे कि उनके न होने से शायद वे वह नहीं बन पाते जो वे बने। अपने इस प्यारे मित्र को वे जीवन भर नहीं भूल पाये और अपनी आत्मकथा में भी वे कर्कल का वर्णन करते समय भावविभोर हो जाते हैं–

"मेरे व्यक्तित्व का विकास कई नियंत्रणों के बीच हो रहा था। कर्कल के ऊपर कोई नियन्त्रण नहीं था। उनका विकास स्वच्छन्द स्वाभाविक गति से हो रहा था, और कभी–कभी मैं सोचता हूँ कि अगर गोसाई जी का संसर्ग उन्हें प्राप्त न होता तो भी वे अपना सहज–सरस रूप किसी दिन प्राप्त कर लेते। प्रकृति अपने साथ चलने वालों को धोखा नहीं देती धरती कभी धोखा न देगी, माता है। पर कर्कल का सान्निध्य मुझे न मिलता तो शायद मैं वह न बन पाता जो मैं बन सका।"[x]

हरिवंशराय 'बच्चन' की आत्मकथा में बच्चन का समाज से क्या संबंध है, यह स्पष्ट तौर पर दिखता है। कहीं पर वे समाज के सकारात्मक रूप से जुड़े दिखाई पड़ते हैं तो कहीं नकारात्मक रूप से उन्होंने स्वयं भी व्यक्ति और समाज के संबंध को लेकर कई जगहों पर वर्णन किया है। उन्होंने आत्मकथा में एक जगह लिखा है–

"समाज में व्यष्टि और समष्टि के संबंधों पर जब–जब मैंने सोचा है, क्षोभ से भर उठा हूँ। व्यक्ति को समाज के सहयोग की आवश्यकता होती है, अपने साधारण जीवन में भी अपने सुख, अपने दुख में भी। पर व्यक्ति को समाज से यह सहयोग लेने के लिए बड़ा महँगा मूल्य चुकाना पड़ता है। उसे अपनी स्वतंत्रता समाज के हाथों गिरवी रखनी पड़ती है। समाज से कोई स्वतंत्र हुआ नहीं, उसके विपरीत, उससे अलग उसने कुछ किया नहीं कि समाज उस पर अपना आक्रोश प्रकट करना शुरू कर देता है। आक्रोश तो प्रायः दुर्बल प्रकट करते हैं। समाज अपनी शक्ति समझता है संघ शक्तिः वह व्यक्ति के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही करता है, उस पर प्रतिबंध लगाता है, उसे दंड देता है। इस संबंध में समाज कितना क्रूर हो सकता है। विशेषकर हिंदू समाज इसकी कोई सीमा नहीं।"[xi]

आत्मकथा के चारों खंडों में यदि हरिवंशराय 'बच्चन' का व्यक्तित्व देखा जाए तो उनके व्यक्तित्व में क्रमशः विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। शुरूआत के दो खंडों में बच्चन समाज की नकारात्मक चीज़ों से टकराते हुए भी सामाजिक संबंधों के मामले में सकारात्मक रुख रखते हैं। लोगों के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार करते हैं। कई जगह तो ऐसा लगता है कि यदि उनके ये फलाँ मित्र नहीं होते तो पता नहीं क्या हो जाता। लेकिन तीसरे खंड में जब वे विदेश में पी–एच.डी. की पढ़ाई कर रहे होते हैं तो उन्हें पूरा संसार ही दुश्मन प्रतीत होता है। वे अपने परिवार को लेकर असुरक्षा की भावना महसूस करते हैं। कहीं–कहीं उन्होंने

लोगों के प्रति अपशब्द का भी प्रयोग किया है। यहाँ पर उनका व्यक्तित्व समाज से कटता नज़र आता है। जब वे अपने जीवन के सर्वोच्च शिखर पर होते हैं तो लगता है कि जैसे वे आत्मकेंद्रित हो गये हों। समाज के जीवंत रूप का वर्णन उनकी आत्मकथा के अंतिम दो खंडों में नज़र नहीं आता जो पहले दो खंडों में है। गोपेश्वर सिंह ने इस संबंध में लिखा है–

"पहली बात तो यह कि बच्चन में विस्तार बहुत अधिक है जैसे–जैसे आत्मकथा आगे बढ़ती है, वैसे–वैसे उनका अपने ऊपर नियंत्रण खत्म होता जाता है, अप्रासंगिक जीवन–प्रसंग भी विस्तार पाने लगते हैं। दूसरे यह कि बच्चन के इलाहाबाद के संघर्षमय जीवन के बाद उनके पास ऐसा कुछ नहीं रह जाता, जिसमें पाठक की गहरी दिलचस्पी हो। वह एक सुखी मध्यवर्गीय व्यक्ति का रूटीन लाइफ है, जिसमें कोई उल्लेखनीय उतार–चढ़ाव नहीं है। तीसरी और अंतिम बात यह कि भारतीय समाज, जनता और साहित्य को लेकर उनमें कोई बड़ी चिंता, द्वंद्व. और क्रिया नहीं है, जो किसी व्यक्ति या रचनाकार को अपने से ऊपर उठाती है। बच्चन के व्यक्तिवाद में प्रारंभ में समाज भी है, क्योंकि उनका सारा संघर्ष उसके बीच है, धीरे–धीरे उनका मैं उनके व्यक्तिवाद को आक्रांत कर लेता है और अपने सिवा उन्हें देश–दुनिया की चिंताओं से अखंड मुक्ति मिल जाती है।"[xii]

गोपेश्वर ने आत्मकथा के अंतिम खंडों में जो व्यक्तिवादी वर्णन की बात की है, वह आंशिक रूप से ही सही प्रतीत होती है। इस खंड में समाज की चिंताएँ भले न हों, लेकिन साहित्यिक चिंताएँ अवश्य हैं। अनुवाद प्रक्रिया को लेकर जितनी बातें बतलायी गई हैं, वह किसी भी रूप में हिंदी साहित्य के लिए कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। इसके अतिरिक्त भारत की राजनीतिक स्थिति का वर्णन है। भारत की विदेश नीति से संबंधित चिंताएँ हैं। भारत–चीन युद्ध की स्थिति का वर्णन है। इस युद्ध

के बाद उपजी हुई भारतीय मानस की चिंताएँ हैं। आपातकालीन स्थिति का वर्णन है। क्या यहाँ पर व्यक्ति एवं समाज के बीच का अंतःसंबंध नहीं है? बच्चन का व्यक्तित्व इन सारी स्थितियों से टकराता नज़र आता है।

हाँ, यह सही है कि वे सर्वोच्चता के शिखर पर पहुँच जाने के बाद अपनी पारिवारिक चिंताओं से ज्यादा ग्रसित हो गये हैं और कहीं–न–कहीं आत्मश्लाघा के शिकार अवश्य हुए हैं। कहीं–कहीं ये वर्णन उचाट भी प्रतीत होते हैं। ऐसा इसलिए है कि बच्चन जीवन की उस अवस्था में पहुँच चुके थे, जहाँ पर ऐसा हो जाना स्वाभाविक प्रक्रिया है। यह अवस्था भी मनुष्य के सामाजिक जीवन का ही एक रूप है। इस अवस्था में व्यक्ति प्रायः पारिवारिक चिंताओं से ज्यादा ग्रसित हो जाता है।

इसका मतलब यह कदापि नहीं है कि वहाँ पर व्यक्ति और समाज का संबंध नहीं है। क्या समाज केवल सर्वसाधारण वर्ग का होता है? क्या अभिजात्य वर्ग या उच्च वर्ग का कोई समाज नहीं होता। हाँ, यह सही है कि इलाहाबाद के बाद जब बच्चन दिल्ली आते हैं तो उनकी सामाजिक स्थिति बदलती है। यह बदलाव उनकी भाषा से लेकर आत्मकथा की विषयवस्तु तक है, लेकिन जब वे अंग्रेजीदा लोगों की चर्चा करते हैं तो समाज के एक खास वर्ग की मानसिकता का पता चलता है। यहाँ भी जब वे हिंदी भाषा के पक्ष में खड़े होकर इस मानसिकता वाले लोगों से टकराते हैं तो बच्चन के शुरुआती जीवन के संघर्ष का ही एक रूप नजर आता है। वे भारतीय समाज के विकास में अंग्रेज़ी को सबसे बड़ी बाधा मानते हैं और हिंदी के विकास की बात करते हैं। ऐसे में उनके भीतर का व्यक्ति समाज के आम नागरिक के पक्ष में खड़ा दिखता है।

किसी भी रचना में सीधे–सीधे समाज के रूप को देखना कहाँ तक उचित है। समाज का वर्णन सीधे तौर पर आ जाने से कोई रचना

सामाजिक नहीं हो जाती है। आत्मकथा के पहले दो खंडों की भाँति अंतिम दोनों खंडों में भले ही लोकतत्त्व और लोककथाओं का वह रूप नहीं है जो आत्मकथा को जीवंत बनाती है, लेकिन बच्चन वही हैं। अब बच्चन भाग–दौड़ वाले समाज में आ गये हैं, जहाँ पर उनका सृजन पक्ष उसी के अनुरूप ढल गया या उन्होंने स्वयं ऐसा किया है। बच्चन की रचनाओं की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि उनकी विषयवस्तु से लेकर उनकी भाषा तक में समाज की स्थिति के अनुरूप परिवर्तन आता है।

एक महत्त्वपूर्ण बिंदु यह है कि चारों खंडों के लेखक बच्चन ही हैं। एक ही लेखक दिल्ली में रहकर (जब वे अभिजात्य संस्कृति से जुड़ गए हैं) अपने जीवन के प्रति अपनी अभिव्यक्ति दे रहा है। फिर ये अंतर कैसे? इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि बच्चन एक मँजे हुए लेखक हैं। वे जानते हैं कि वे आत्मकथा लिख रहे हैं और व्यक्ति का संबंध जिस समाज से होगा, समाज के उसी रूप का आत्मकथा में चित्रण भी होगा। इसलिए उनका संबंध जिस भी समाज से रहा, उसका चित्रण उन्होंने उस समाज की खास विशेषताओं के साथ किया है। यही कारण है कि उनकी आत्मकथा के प्रत्येक खंड में समाज का रूप बदलता रहता है! और यह बदलाव भाषा से लेकर उनकी संवेदना तक देखा जा सकता है।

बच्चन कवि और लेखक थे। इसलिए वे सृजन कार्य करने के लिए एकांत चाहते थे। उनके लिए यहाँ पर अकेलापन एकांत का द्योतक है, जिससे उनके चिंतन–मनन–सृजन पर कोई बाधा न पड़े। उनके जीवन के कुछ क्षणों के बाद जब अकेलापन समाप्त हो गया तब उन्हें अकेलेपन से डर लगने लगा था। जो भी हो, पर उनके जीवन के कुछ क्षणों में ही अकेलेपन और सामाजिकता का जो द्वंद्व रहा है, उसने उनकी रचना–प्रक्रिया को भी प्रभावित किया है। भले ही उनके द्वारा उस समय लिखी गयी कविता का स्वर समाज की पुकार हो लेकिन

इसके अंदर उनके जीवन की व्याकुलता एवं मनःस्थिति का ही चित्रण हो रहा था। संभव है, उनकी जैसी मनःस्थिति समाज के और भी लोगों की हो सकती है एवं यहाँ पर आकर उनकी पीड़ा सामाजिक पीड़ा हो जाती है।

सन्दर्भ सूची

[i] बच्चन, निकट से, सं. डॉ. रमेश गुप्त, राजकमल प्रकाशन–नई दिल्ली, संस्करण–1979, पृष्ठ–229

[ii] राय चौधरी दत्त, भारत का वृहत इतिहास मजूमदार, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण–2005, पृष्ठ–294

[iii] बच्चन, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, राजपाल एण्ड सन्ज, संस्करण–1997, पृष्ठ–45

[iv] बच्चन, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, राजपाल एण्ड सन्ज, संस्करण–1997, पृष्ठ–46

[v] बच्चन, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, राजपाल एण्ड सन्ज, संस्करण–1997, पृष्ठ–62

[vi] बच्चन, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, राजपाल एण्ड सन्ज, संस्करण–1997, पृष्ठ–75

[vii] बच्चन, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, राजपाल एण्ड सन्ज, संस्करण–1997, पृष्ठ–98

[viii] बच्चन, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, राजपाल एण्ड सन्ज, संस्करण–1997, पृष्ठ–136

[ix] बच्चन, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, राजपाल एण्ड सन्ज, संस्करण–1997, पृष्ठ–88

[x] बच्चन, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, राजपाल एण्ड सन्ज, संस्करण–1997, पृष्ठ–157

[xi] बच्चन, नीड़ का निर्माण फिर, राजपाल एण्ड सन्ज, संस्करण–2003, पृष्ठ–20

[xii] गोपेश्वर सिंह, पूर्वार्ध लेख, बच्चन की आत्मकथा, कसौटी पत्रिका, अंक–15, सं नंद किशोर नवल, पृष्ठ–405